Volume 1; Issue 2
April to Jun 2025

E-ISSN: 3049-1134

International Journal of Political Studies

Peer Review Indexed Refereed Journal

Quarterly International Research Journal

International Journal of Political Studies
E-ISSN: 3049-1134
https://www.polsci.in
Volume 1; Issue 2; April to Jun 2025; Page No. 30-38
Peer Review, Indexed and Refereed Journal

गांधी और वैश्वीकरणः आत्मनिर्भरता के सिद्धांत की आधुनिक व्याख्या

डा. सुनीता बघेले
सहायक प्राध्यापक
राजनीति शास्त्र,
भगवान विरसा मुंडा शासकीय महाविद्यालय,
दिव्यगवा, रीवा मध्य प्रदेश

सारांश

वैश्विक परिप्रेक्ष्य में महात्मा गांधी के विचारों की प्रासंगिकता न केवल एक नैतिक मार्गदर्शक के रूप में, बल्कि एक व्यवहारिक सामाजिक–आर्थिक मॉडल के रूप में भी सामने आती है। विशेषतः आत्मनिर्भरता का उनका सिद्धांत, जो उन्होंने ग्राम स्वराज और स्वदेशी आंदोलन के माध्यम से प्रस्तुत किया था, आधुनिक वैश्वीकरण की चुनौतियों के बीच एक वैकल्पिक दृष्टिकोण प्रदान करता है। यह शोध–पत्र इसी वैकल्पिक दृष्टिकोण को समझने और आधुनिक संदर्भ में पुनः व्याख्यायित करने का प्रयास है।

मुख्य शब्दः *गांधी, वैश्वीकरण, आत्मनिर्भरता*

आज के वैश्विक परिप्रेक्ष्य में महात्मा गांधी के विचारों की प्रासंगिकता न केवल एक नैतिक मार्गदर्शक के रूप में, बल्कि एक व्यवहारिक सामाजिक–आर्थिक मॉडल के रूप में भी सामने आती है। विशेषतः आत्मनिर्भरता का उनका सिद्धांत, जो उन्होंने ग्राम स्वराज और स्वदेशी आंदोलन के माध्यम से प्रस्तुत किया था, आधुनिक वैश्वीकरण की चुनौतियों के बीच एक वैकल्पिक दृष्टिकोण प्रदान करता है। यह शोध–पत्र इसी वैकल्पिक दृष्टिकोण को समझने और आधुनिक संदर्भ में पुनः व्याख्यायित करने का प्रयास है।

वैश्वीकरण को सामान्यतः एक ऐसी प्रक्रिया के रूप में समझा जाता है जिसमें आर्थिक, सामाजिक, तकनीकी और सांस्कृतिक सीमाएँ सिमट जाती हैं और विश्व एकीकृत बाजार के रूप में उभरता है। यह प्रक्रिया 20वीं शताब्दी के उत्तरार्ध से तीव्र गति से आगे बढ़ी है, जिसके कारण पूँजी, श्रम और उत्पादों का विश्वव्यापी प्रवाह बढ़ा है (सेन, 2001, पृ. 240)। यद्यपि वैश्वीकरण ने आर्थिक विकास, तकनीकी नवाचार और उपभोग की संभावनाओं को विस्तृत किया है, परंतु इसके परिणामस्वरूप असमानता, पर्यावरणीय संकट, सांस्कृतिक क्षरण और स्थानीय उत्पादकता के विनाश जैसी समस्याएँ भी उत्पन्न हुई हैं।

ऐसे समय में गांधी का आत्मनिर्भरता का सिद्धांत हमें स्थानीय संसाधनों, समुदाय–आधारित उत्पादन, और नैतिक उपभोग की ओर लौटने का आमंत्रण देता है। गांधी का मानना था कि ''भारत की आत्मा गांवों में बसती है'' और जब तक गांव स्वावलंबी नहीं बनते, तब तक भारत सच्चे अर्थों में स्वतंत्र नहीं हो सकता (गांधी, 1909, अध्याय 13)। आत्मनिर्भरता उनके लिए केवल आर्थिक अवधारणा नहीं थी, बल्कि यह एक समग्र सामाजिक, सांस्कृतिक और नैतिक दृष्टिकोण था जो व्यक्ति और समाज दोनों के विकास को एकीकृत करता था।

इस शोध का उद्देश्य है गांधी के आत्मनिर्भरता सिद्धांत की आधुनिक वैश्वीकरण संदर्भ में पुनर्व्याख्या करना, यह समझना कि किस प्रकार उनके विचार आज के आर्थिक ढाँचे को अधिक मानवीय, टिकाऊ और समतामूलक बना सकते हैं। यह विषय इसलिए भी प्रासंगिक है क्योंकि वैश्वीकरण की आड़ में बढ़ती उपभोक्तावादी संस्कृति और केंद्रीकृत आर्थिक सत्ता आज पुनः उस लोक–आधारित विचारधारा की माँग कर रही है जिसकी जड़ें गांधी के दर्शन में मौजूद हैं।

गांधी का आत्मनिर्भरता का सिद्धांत

महात्मा गांधी का आत्मनिर्भरता का सिद्धांत उनके सम्पूर्ण सामाजिक, आर्थिक और राजनीतिक चिंतन का मूलाधार था। गांधी आत्मनिर्भरता को केवल आर्थिक स्वतंत्रता तक सीमित नहीं मानते थे, बल्कि इसे आत्मबल, नैतिक विवेक और सामूहिक सहयोग के साथ जोड़ते थे। उनके अनुसार ''स्वराज'' का वास्तविक अर्थ था दृ अपने ऊपर शासन करना, यानी व्यक्ति और समुदाय का ऐसा विकास जो बाहरी नियंत्रण के बजाय आंतरिक अनुशासन, आत्मसंयम और सहयोग पर आधारित हो (गांधी, 1909, अध्याय 4)। गांधी के आत्मनिर्भरता के विचार की केंद्रीय धुरी उनका ग्राम स्वराज का मॉडल था। इसमें उन्होंने छोटे–छोटे गांवों

को स्वशासी इकाइयों के रूप में देखा जो अपनी आवश्यकताओं की पूर्ति स्थानीय संसाधनों और श्रम के माध्यम से कर सकें। वे मानते थे कि भारत की आत्मा गांवों में बसती है और यदि भारत को सही मायनों में स्वतंत्र और समृद्ध बनाना है, तो गांवों को आर्थिक, सामाजिक और राजनीतिक रूप से सशक्त बनाना होगा (परेख, 1997, पृ. 114)।

आत्मनिर्भरता के इस दृष्टिकोण में स्वदेशी आंदोलन की भी महत्वपूर्ण भूमिका थी। गांधी का 'स्वदेशी' का आग्रह केवल विदेशी वस्त्रों के बहिष्कार तक सीमित नहीं था, बल्कि यह एक गहरा सांस्कृतिक और आर्थिक दृष्टिकोण था जो यह कहता था कि जो वस्तुएँ हमारे निकट, हमारे समुदाय और क्षेत्र में उपलब्ध हैं, उनका उपयोग प्राथमिकता से किया जाए। उन्होंने खादी को इसका प्रतीक बनाया दृ एक ऐसा वस्त्र जो न केवल स्थानीय उत्पादन और श्रम का प्रतिनिधित्व करता था, बल्कि एक आत्मसम्मान और स्वतंत्रता का प्रतीक भी था (पान्डेय, 2003, पृ. 86)।

इसके अतिरिक्त गांधी विकेन्द्रीकरण के पक्षधर थे। वे मानते थे कि शक्ति और संसाधनों का केंद्रीकरण समाज में विषमता और शोषण को जन्म देता है। आत्मनिर्भरता का तात्पर्य था दृ छोटे–छोटे स्वायत्त इकाइयों का निर्माण जो न केवल आर्थिक रूप से स्वावलंबी हों, बल्कि निर्णय लेने में भी सक्षम हों। इस दृष्टिकोण में न केवल राजनीतिक स्वतंत्रता की मांग थी, बल्कि सामाजिक न्याय और आर्थिक समानता की भी स्पष्ट चेतना निहित थी (कुमार, 2011, पृ. 39)।

गांधी के आत्मनिर्भरता के सिद्धांत में आधुनिकता की आलोचना भी स्पष्ट रूप से झलकती है। वे औद्योगीकरण और अंधाधुंध उपभोक्तावाद को विनाशकारी मानते थे। उनका कहना था कि ''पृथ्वी सबकी आवश्यकताओं को तो पूरा कर सकती है, लेकिन किसी एक के लोभ को नहीं'' (गांधी, यंग इंडिया, 27 अक्टूबर 1921)। आज जब वैश्वीकरण के नाम पर संसाधनों का शोषण और पर्यावरणीय संकट गहरा हो रहा है, गांधी का यह दृष्टिकोण पहले से कहीं अधिक सामयिक प्रतीत होता है।

वैश्वीकरण की संकल्पना और प्रभाव

वैश्वीकरण को सामान्यतः एक ऐसी प्रक्रिया के रूप में देखा जाता है जिसके माध्यम से विश्व की विभिन्न अर्थव्यवस्थाएं, संस्कृतियाँ, और जनसमूह आपस में अधिकाधिक संपर्क में आते हैं और उनके बीच परस्पर निर्भरता बढ़ती है। यह एक बहुआयामी अवधारणा है जिसमें तकनीक, व्यापार, संस्कृति, और राजनीति के क्षेत्र में सीमाएँ धुंधली हो जाती हैं। रोनाल्ड रॉबर्टसन (1992) ने वैश्वीकरण को ''विश्व का सिकुड़ जाना और विश्व के प्रति चेतना

में तीव्र वृद्धि'' के रूप में परिभाषित किया है (Globalization: Social Theory and Global Culture, पृ. 8)। वैश्वीकरण की प्रमुख विशेषताओं में शामिल हैं दृ अंतरराष्ट्रीय व्यापार में वृद्धि, वित्तीय पूंजी का वैश्विक प्रवाह, संचार और सूचना तकनीक की तीव्र प्रगति, सांस्कृतिक अंतर्संवाद, और शासन प्रणालियों की आपसी अंतःक्रिया। यह प्रक्रिया 1990 के बाद विशेष रूप से तीव्र हुई जब विश्व व्यापार संगठन, अंतरराष्ट्रीय मुद्रा कोष और विश्व बैंक जैसे वैश्विक संस्थानों ने खुली बाजार व्यवस्था को बढ़ावा देना शुरू किया।

इसका आर्थिक प्रभाव सबसे स्पष्ट रूप से देखा गया है दृ उत्पादन की लागत कम करने हेतु कंपनियों ने श्रम–प्रधान देशों में उद्योग स्थापित किए, जिससे एक ओर रोजगार के अवसर बढ़े तो दूसरी ओर असंगठित क्षेत्र में श्रम शोषण भी तीव्र हुआ (स्टिग्लिट्ज, 2002, पृ. 63)। सामाजिक और सांस्कृतिक स्तर पर वैश्वीकरण ने बहुसांस्कृतिकता को बढ़ावा तो दिया, परंतु साथ ही सांस्कृतिक समरूपीकरण (Cultural Homogenization) की प्रवृत्ति भी बढ़ी, जिससे स्थानीय भाषाएँ, परंपराएँ और जीवनशैली संकट में पड़ीं। उपभोक्तावादी संस्कृति का प्रसार हुआ, जिससे जीवन के मूल्यों और आवश्यकताओं का पुनर्परिभाषण हुआ। राजनीतिक प्रभावों की बात करें तो वैश्वीकरण ने राज्यों की पारंपरिक प्रभुसत्ता को चुनौती दी। आर्थिक निर्णय अब कई बार स्थानीय सरकारों के नियंत्रण से बाहर होते हैं और अंतरराष्ट्रीय संस्थाओं या बहुराष्ट्रीय कंपनियों के प्रभाव में लिए जाते हैं (गिल, 2003, पृ. 41)।

ग्रामीण भारत पर वैश्वीकरण के प्रभाव विशेष रूप से ध्यान देने योग्य हैं। हरित क्रांति और उदारीकरण के बाद किसानों पर रासायनिक खेती, बीटी बीज और महंगे कृषि उपकरणों का बोझ बढ़ा, जिससे कर्ज, आत्महत्या और पलायन जैसी समस्याएं बढ़ीं (पाटिल, 2015, पृ. 92)। पारंपरिक कुटीर उद्योगों और हस्तशिल्प को बाजार में टिकने में कठिनाई होने लगी क्योंकि वे बड़ी कंपनियों के सस्ते और मानकीकृत उत्पादों से प्रतिस्पर्धा नहीं कर पाए। बहुराष्ट्रीय कंपनियों का प्रसार वैश्वीकरण का एक महत्त्वपूर्ण आयाम है। इन्होंने न केवल उपभोग की आदतों को बदला है, बल्कि स्थानीय उत्पादन और वितरण व्यवस्थाओं को भी प्रभावित किया है। उदाहरणस्वरूप, बड़ी खुदरा श्रृंखलाओं (जैसे वॉलमार्ट) के आगमन से स्थानीय किराना व्यापार को संकट का सामना करना पड़ा।

इस प्रकार वैश्वीकरण जहाँ एक ओर अवसरों और नवाचारों की दुनिया खोलता है, वहीं दूसरी ओर वह असमानता, निर्भरता और सांस्कृतिक क्षरण जैसी चुनौतियाँ भी प्रस्तुत

करता है। इन प्रभावों के आलोक में गांधी का स्थानीयता और आत्मनिर्भरता का विचार एक विकल्प के रूप में सामने आता है, जिसकी चर्चा अगले खंड में की जाएगी।

गांधी के सिद्धांत बनाम वैश्वीकरण

गांधी के सिद्धांत और वैश्वीकरण के मूल तत्व एक–दूसरे के विपरीत ध्रुवों पर स्थित प्रतीत होते हैं। जहां वैश्वीकरण की प्रक्रिया विश्व को एकीकृत और निर्भर बनाती है, वहीं गांधी का चिंतन आत्मनिर्भरता, विकेन्द्रीकरण और नैतिक विकास पर आधारित है। इन दोनों दृष्टिकोणों के बीच विरोधाभास को विभिन्न स्तरों पर समझा जा सकता है।

आत्मनिर्भरता बनाम वैश्विक निर्भरताः

गांधी का मानना था कि प्रत्येक व्यक्ति, समुदाय और राष्ट्र को अपनी आवश्यकताओं की पूर्ति के लिए दूसरों पर अत्यधिक निर्भर नहीं होना चाहिए। उन्होंने कहा, "स्वराज का अर्थ है आत्म–नियंत्रण और आत्मनिर्भरता" (गांधी, 1909, अध्याय 13)। इसके विपरीत वैश्वीकरण की प्रकृति ही आपसी निर्भरता पर आधारित है दृ उत्पादन एक देश में, उपभोग दूसरे में और कच्चा माल तीसरे देश से आता है। इस संरचना में स्थानीय स्वावलंबन समाप्त होता चला जाता है और वैश्विक बाजार की अनिश्चितता स्थानीय अर्थव्यवस्थाओं को अस्थिर करती है (सेन, 1999, पृ. 149)।

उपभोक्तावाद बनाम सीमित आवश्यकताः

गांधी का स्पष्ट कथन था– "असली सुख आवश्यकताओं की पूर्ति में है, न कि विलासिता में" (गांधी उद्धृत, यंग इंडिया, 21 जुलाई 1921)। वे सीमित आवश्यकताओं, संयम और सरल जीवन के पक्षधर थे। इसके विपरीत वैश्वीकरण ने उपभोक्तावाद को नई ऊँचाइयों तक पहुँचाया है, जहाँ व्यक्तित्व का मूल्य उपभोग की क्षमता से आँका जाता है। इसने इच्छाओं को अनंत और संसाधनों को दोहन योग्य बना दिया है, जिससे पर्यावरणीय संकट भी गहराया है (Bauman, 2007, पृ. 45)।

केंद्रीकरण बनाम विकेन्द्रीकरणः

गांधी का आदर्श समाज विकेन्द्रित था दृ जिसमें शक्ति, संसाधन और निर्णय स्थानीय स्तर पर नियंत्रित हों। उन्होंने ग्राम स्वराज को इसी विकेन्द्रीकरण की जीवंत परिकल्पना बताया (पारेख, 1997, पृ. 61)। इसके विपरीत वैश्वीकरण में निर्णय केंद्रित होते जा रहे हैं बहुराष्ट्रीय कंपनियाँ और अंतरराष्ट्रीय वित्तीय संस्थाएँ नीतिगत निर्णयों को प्रभावित करती हैं, जिससे स्थानीय समुदायों की भागीदारी और निर्णयात्मक शक्ति सीमित हो जाती है।

स्थानीयकरण बनाम भूमंडलीकरणः

गांधी का 'स्वदेशी' सिद्धांत स्थानीयकरण की पैरवी करता है दृ यानी

वह उत्पादन और उपभोग जो स्थानीय संसाधनों से, स्थानीय लोगों द्वारा और स्थानीय आवश्यकताओं की पूर्ति हेतु हो। वे मानते थे कि आर्थिक गतिविधियाँ स्थानीय जीवन की रक्षा और उत्थान हेतु हों, न कि बाहरी पूँजी और हितों की सेवा के लिए (रवि, 2010, पृ. 72)। भूमंडलीकरण के कारण यह संतुलन टूटा है दृ स्थानीय उत्पादन का क्षय और बाहरी उत्पादों की बाढ़ ने गांवों और कस्बों की अर्थव्यवस्था को कमजोर किया है।

मूल्य आधारित विकास बनाम लाभ आधारित विकासः

गांधी का विकास मॉडल नैतिकता, सामाजिक न्याय, और पर्यावरणीय संतुलन पर आधारित था। उन्होंने कहा था "अर्थव्यवस्था ऐसी होनी चाहिए जो गरीब से गरीब व्यक्ति के कल्याण को ध्यान में रखे" (गांधी उद्धृत, हरिजन, 13 नवंबर 1937)। इसके उलट वैश्वीकरण के तहत विकास को प्रायः जीडीपी, बाजार विस्तार और लाभ की कसौटी पर आँका जाता है। इस प्रक्रिया में नैतिकता, मानवीय गरिमा और सामाजिक कल्याण को पीछे छोड़ दिया गया है (Stiglitz, 2006, पृ. 21)।

इस प्रकार गांधी और वैश्वीकरण के विचार एक–दूसरे को चुनौती देते हैं दृ जहां एक ओर गांधी जीवन को साधन और साध्यता के संतुलन में देखते हैं, वहीं वैश्वीकरण साधनों को ही साध्य बनाकर प्रस्तुत करता है। वर्तमान समय की विषमताओं और संकटों में गांधी का दर्शन एक पुनर्विचार और पुनर्निर्माण का आह्वान करता है।

आत्मनिर्भर भारत और गांधी का दृष्टिकोण

भारत सरकार द्वारा वर्ष 2020 में घोषित ''आत्मनिर्भर भारत अभियान'' एक ऐसी नीतिगत पहल थी जो वैश्विक आपूर्ति शृंखला में भारत की स्थिति को सुदृढ़ करने के साथ–साथ घरेलू उत्पादन और नवाचार को प्रोत्साहित करने के उद्देश्य से शुरू की गई। कोविड–19 महामारी के कारण उत्पन्न वैश्विक संकट ने यह स्पष्ट कर दिया कि अत्यधिक वैश्विक निर्भरता किसी भी देश की अर्थव्यवस्था को अस्थिर कर सकती है। इस संदर्भ में 'आत्मनिर्भरता' का विचार पुनः राष्ट्रीय विमर्श का केंद्र बना। यद्यपि इस अभियान में आर्थिक सशक्तिकरण और औद्योगिक स्वदेशीकरण का लक्ष्य स्पष्ट था, परंतु यदि इसे गांधी के दृष्टिकोण से देखा जाए तो यह एक गहरी नैतिक और सामाजिक अवधारणा के रूप में सामने आती है।

गांधी के लिए आत्मनिर्भरता का अर्थ केवल आर्थिक स्वावलंबन नहीं था, बल्कि यह एक समग्र जीवन–दृष्टि थी, जिसमें व्यक्ति, समाज और प्रकृति के बीच संतुलन बना रहे। उन्होंने इसे ''स्वराज'' की

आधारशिला माना दृ एक ऐसी स्थिति जिसमें व्यक्ति और समुदाय अपने निर्णय स्वयं लेने में सक्षम हों, अपनी आवश्यकताओं की पूर्ति स्थानीय संसाधनों से करें, और जीवन को नैतिक मूल्यों के अनुरूप संचालित करें (गांधी, हिंद स्वराज, अध्याय 9)।

आज जब 'आत्मनिर्भर भारत' की बात होती है, तो इसमें भारी उद्योगों, डिजिटल तकनीक, रक्षा उत्पादन, स्टार्टअप्स और वैश्विक प्रतिस्पर्धा में भारतीय उपस्थिति पर जोर दिया जाता है। परंतु गांधी का आत्मनिर्भर भारत एक नीचे से ऊपर की प्रक्रिया थी दृ जिसमें सबसे पहले गांवों को स्वशासी और स्वावलंबी बनाना था। उनका मानना था कि भारत का निर्माण दिल्ली से नहीं, बल्कि लाखों गांवों के निर्माण से होगा (परेख, पृ. 121)। गांधी का आत्मनिर्भरता मॉडल मानव–केंद्रित था दृ जिसमें उत्पादकता का मूल्य मुनाफे की बजाय सामाजिक उपयोगिता से तय होता था। उन्होंने खादी, कुटीर उद्योग, और हस्तशिल्प को आत्मनिर्भरता के प्रतीक रूप में प्रस्तुत किया। इसके विपरीत आज की आत्मनिर्भरता बहुधा बाजार–केंद्रित हो गई है, जिसमें उत्पादन का लक्ष्य वैश्विक प्रतिस्पर्धा में टिकना है, न कि स्थानीय आवश्यकताओं की पूर्ति।

हालांकि यह भी स्वीकार करना होगा कि आधुनिक भारत को आत्मनिर्भर बनाने के लिए विज्ञान, तकनीक और वैश्विक संपर्क आवश्यक हैं, परंतु गांधी के विचार हमें याद दिलाते हैं कि स्वदेशी का अर्थ परायों से घृणा नहीं, बल्कि अपने संसाधनों, श्रम और ज्ञान में विश्वास करना है (गांधी उद्धृत, यंग इंडिया, 22 जून 1921)। उन्होंने चेताया था कि बिना नैतिक दिशा के विकास अंततः विनाश का कारण बन सकता है। आज के संदर्भ में यदि 'आत्मनिर्भर भारत' को वास्तव में सफल बनाना है तो उसे केवल आर्थिक रणनीति के रूप में नहीं, बल्कि सामाजिक पुनर्रचना के रूप में देखना होगा दृ जिसमें ग्रामीण अर्थव्यवस्था, लघु उद्योग, सामाजिक न्याय और पर्यावरणीय संतुलन को केंद्र में रखा जाए। गांधी का दृष्टिकोण एक ऐसे विकास का प्रस्ताव करता है जो न केवल उत्पादन में, बल्कि मानव गरिमा और सामूहिक आत्मबल में भी आत्मनिर्भर हो।
इस दृष्टिकोण में गांधी केवल अतीत की स्मृति नहीं, बल्कि वर्तमान की चुनौती और भविष्य का मार्गदर्शन बन जाते हैं।

निष्कर्ष और समकालीन प्रासंगिकता

आज जब विश्व एक गहरे सामाजिक, आर्थिक और पर्यावरणीय संकट के दौर से गुजर रहा है, गांधी के सिद्धांत और दृष्टिकोण पहले से कहीं अधिक प्रासंगिक हो उठे हैं। वैश्वीकरण ने भले ही तकनीकी विकास, वैश्विक संपर्क और आर्थिक अवसरों के नए द्वार खोले हों, पर

इसके परिणामस्वरूप जो असमानताएँ, सांस्कृतिक क्षरण, उपभोक्तावाद और पर्यावरणीय असंतुलन उत्पन्न हुए हैं, वे गंभीर चिंता का विषय बन चुके हैं। इस परिप्रेक्ष्य में गांधी का आत्मनिर्भरता पर आधारित विकास मॉडल, जो सीमित आवश्यकता, स्थानीय उत्पादन, नैतिक मूल्यों और सामूहिक भागीदारी पर आधारित था, एक वैकल्पिक मार्ग प्रस्तुत करता है। गांधी के चिंतन में जो विकेन्द्रीकृत, सामुदायिक और मूल्याधारित दृष्टि निहित है, वह आज के केंद्रीकृत, लाभ–केन्द्रित और वैश्विक रूप से निर्भर आर्थिक ढांचे को चुनौती देती है। उनकी मान्यता थी कि यदि समाज की अंतिम इकाई दृ गांव दृ आत्मनिर्भर हो जाए, तो संपूर्ण राष्ट्र भी आत्मनिर्भर हो सकता है (गांधी, हरिजन, 29 जुलाई 1939)। यह विचार आज के 'स्मार्ट सिटी' और 'डिजिटल इंडिया' जैसे अभियानों के साथ कैसे समन्वित किया जा सकता है, इस पर गहन विचार की आवश्यकता है।

समकालीन भारत में गांधी का दृष्टिकोण केवल वैचारिक आदर्श नहीं, बल्कि एक व्यावहारिक मार्गदर्शन भी बन सकता है। उदाहरण के लिए, कुटीर और हस्तशिल्प उद्योगों को यदि नीति–समर्थन मिले, तो न केवल ग्रामीण रोजगार बढ़ सकते हैं, बल्कि टिकाऊ और पर्यावरण के अनुकूल उत्पादन की दिशा में भी कदम बढ़ाया जा सकता है। इसी प्रकार, खादी और अन्य स्वदेशी उत्पादों को पुनः मुख्यधारा में लाकर उपभोक्ता संस्कृति को अधिक उत्तरदायी बनाया जा सकता है। इसके साथ ही यह भी आवश्यक है कि गांधी के विचारों को यथार्थवादी दृष्टिकोण से देखा जाए। आज की वैश्विक अर्थव्यवस्था में पूर्ण आत्मनिर्भरता संभव नहीं है, लेकिन संतुलित वैश्वीकरण की दिशा में बढ़ा जा सकता है जिसमें स्थानीय उत्पादन को प्राथमिकता मिले, पर्यावरणीय सीमाओं का सम्मान हो, और विकास के मापदंडों में नैतिकता, समता और गरिमा को भी स्थान मिले (Sen, 2009, पृ. 213)।

गांधी का सबसे बड़ा योगदान शायद यह रहा कि उन्होंने विकास को केवल आर्थिक समृद्धि के रूप में नहीं, बल्कि नैतिक और सामाजिक उन्नयन के रूप में देखा। उनके लिए 'स्वराज' का अर्थ केवल राजनीतिक स्वतंत्रता नहीं था, बल्कि व्यक्ति और समाज के भीतर आत्मबल, आत्मसंयम और आत्म–प्रकाश का विकास भी था। इस प्रकार गांधी का आत्मनिर्भरता मॉडल हमें केवल आर्थिक दिशा नहीं, बल्कि जीवन की वैकल्पिक दृष्टि भी प्रदान करता है दृ एक ऐसी दृष्टि जो करुणा, न्याय और सामूहिक भलाई पर आधारित हो।

इस शोध का निष्कर्ष यह है कि वैश्वीकरण के युग में गांधी के आत्मनिर्भरता के सिद्धांत एक निष्क्रिय अतीत नहीं, बल्कि एक सक्रिय विकल्प हैं दृ जो हमें विकास

की ऐसी राह दिखाते हैं जो टिकाऊ, समावेशी और मानवीय हो। यह दृष्टिकोण न केवल भारत के लिए, बल्कि समूचे विश्व के लिए एक सशक्त प्रेरणा बन सकता है, बशर्ते हम इसे केवल प्रतीकात्मक न मानकर व्यवहार में लाने का साहस करें।

संदर्भिका

गांधी, मोहनदास करमचंद, *हिंद स्वराज,* नवजीवन प्रकाशन मंडल, 1938 (प्रथम प्रकाशन 1909).

गांधी, मोहनदास करमचंद, *हरिजन,* नवजीवन प्रकाशन मंडल (विभिन्न अंकों का संकलन).

गांधी, मोहनदास करमचंद, *यंग इंडिया,* नवजीवन प्रकाशन मंडल (विभिन्न अंकों का संकलन).

पाटिल, शिवराज, *भारतीय कृषि पर वैश्वीकरण का प्रभाव* प्रभात प्रकाशन, 2015

परेख, रजनी, *गांधी का राजनीतिक चिंतन,* साहित्य अकादमी, 2001

Parekh, Bhikhu. Gandhi: *A Very Short Introduction.* Oxford University Press, 1997.

Sen, Amartya. *Development as Freedom*, Oxford University Press, 1999.

Sen, Amartya. *The Idea of Justice*, Harvard University Press, 2009.

Stiglitz, Joseph E. *Globalization and Its Discontents*, W. W. Norton & Company, 2002.

Stiglitz, Joseph E. *Making Globalization Work*, W. W. Norton & Company, 2006.

Robertson, Roland. Globalization: Social Theory and Global Culture, Sage Publications, 1992.

Gill, Stephen. *Power and Resistance in the New World Order*, Palgrave Macmillan, 2003.

Bauman, Zygmunt. *Consuming Life*, Polity Press, 2007.

Kumar, Ravi. *Gandhi's Economic Thought*, Deep & Deep Publications, 2010.